

रे में कभी खयाल नहीं को मन भी नहीं करता सर अंदाज से ज्यादा लती है। यही हुआ हाल मारायण को लेकर जब शामिल होने और उन पर

१३ फरवरी २००२ को का सभागार लगभग फा जाहिर था कि मुंबई परंपरा अभी भी सजीव-पोक-समादृत संगीतकारों की देर और दूर तक लोगों अपनी बेटी अरुणा और पंडितजी ने अपेक्षाकृत ही लोमहर्षक दृश्य था। अरुणा बजा रही थीं। उनमें लेकिन दुःखान नहीं: गुरु भी स्पष्ट और प्रगट थी लग व्यक्तित्व भी साफ था। मैं सच्चा गुरु शिष्य के करण नहीं तैयार करता। उसके व्यक्तित्व के

ले लगता है कि मुख्यतः संगीत है: ऐसा संगीत जो गीतों को, अलंकारों और गीतों को, मौन को भी और मौन दोनों को एक और सिर्फ सरोद करती है। नहीं अतीत भी पुकारा है। हिंदुस्तानी संगीत का वाद्य भी है: किसी और मानद भी: सूक्ष्मता और दया है जितना कि सारंगी

परत भवन में एक सारंगी लगभग एक सौ तीस वहां से जारी भोपाल गदान को कृतज्ञतापूर्वक पंडित रामनारायण उन होने सारंगी को मित्र और दिलाई। बल्कि एकल बस से प्रबल प्रतिष्ठा हमारे मारायण के प्रयत्नों और ही नहीं उन्होंने सारंगी की खपण भूमिका निभाई है। रे ही समय में उस्ताद दया दिलाई वह अभूतपूर्व है। तरह किसी सामाजिक न पड़ा था- आखिर वह मारायण का वाद्य थी। लेकिन दि से जुड़कर सामाजिक



कभी-कभार

अशोक वाजपेयी

रूप से बहुत निचले स्तर का माने जाना लगा था। इस लॉन्चन से मुक्त करने और फिर उसे विश्व स्तर पर प्रतिष्ठा दिलाने का काम संगीत के इतिहास में क्रांतिकारी है। यह बात भी याद रखने की है कि हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत को विश्व के संगीत-नक्षत्र पर स्थापित करने में भूमिका पंडित रविशंकर उस्ताद अली अकबर खां, उस्ताद विलायत खां आदि के साथ पंडित रामनारायण की भी है। मैंने पेरिस में बरसों पहले पंडित रामनारायण के दर्जनों रिकार्ड ब्रिकेटे देखे थे। बीसवीं शताब्दी के महान चित्रकार मार्क शगल की अस्सीवीं वर्षगांठ पर पेरिस के बाहर उनके घर पर सारंगीवादन के लिए अगर पंडितजी आमंत्रित किए गए थे तो यह पश्चिम में उनकी उपस्थिति का एक नाटकीय एहतराम भर था।

मराठी कवि-आलोचक, अनुवादक और फिल्मकार दिलीप चित्रे भी इस आयोजन में मुझे से आए थे। वे शास्त्रीय संगीत के गहरे मर्मज्ञ हैं और पिछले सात-आठ बरसों से पंडित रामनारायण से उनके जीवन, संगीत आदि पर बातचीत करते रहे हैं। वे इन दिनों, लगभग पचास-साठ बरसों में फैली इस रिकार्ड की हुई बातचीत के आधार पर पंडितजी पर एक पुस्तक लिख रहे हैं जो, उनके अनुसार, पिछली शताब्दी के उत्तरार्द्ध की हिंदुस्तानी संगीत की निजी दृष्टि से देखो-कहो गाथा भी होने जा रही है। क्योबुद्ध फिल्मी संगीतकार नोशाद अली ने इस आयोजन में यह कहा कि उनके गानों में सारंगी बजाकर पंडितजी ने उन्हें इजाजत बखशी है।

रज़ा पर पुस्तकें

बाईस फरवरी २००२ को पेरिस में बसे भारतीय चित्रकार सैयद हैदर रज़ा अस्सी बरस के हो गए। इस अवसर पर उनके चित्रों की एक बड़ी प्रदर्शनी मुंबई की जहांगीर आर्ट गैलरी में शरण अम्पा राव द्वारा आयोजित है। पिछले बरस के जून से मैंने रज़ा की जिंदगी और कला पर एक पुस्तक लिखने का मन बनाया और उस पर काम शुरू किया। पेरिस में उनके साथ तीन बार लंबी-लंबी बातचीत हुई। रज़ा उन थोड़े से चित्रकारों में से हैं जो अपनी बात पूरी सफाई और नपे-तुले अंदाज में कहते हैं। वे सतर्क रहते हैं और प्रायः कभी किसी की बुझा-भला नहीं कहते। अपने काम के प्रति उनकी एकग्रता असाधारण है। मैंने सोचा था कि यह पुस्तक अंग्रेजी और हिंदी में, दोनों एक साथ तैयार और प्रकाशित हो जाएगी। लेकिन जब कदम आगे बढ़ा तो लगा कि यह आसान नहीं होगा। कुछ इसलिए भी कि मैं

मुख्यतः साहित्यालोचक हूं और कला-लोचना के क्षेत्र से उतना अभ्यस्त नहीं हूँ जितना कि रज़ा जैसे मूर्धन्य पर लिखने के लिए होना चाहिए। इस बीच यह तथ्य हुआ कि रज़ा पर एक कला-पुस्तक उनकी अस्सीवीं वर्षगांठ पर प्रकाशित की जाए। पेरिस में ही बसे कला-प्रकाशक रवि कुमार इस दिशा में फुर्ती के साथ सक्रिय हुए और अब उन पर यह पुस्तक राज और साधारण संस्करणों में, क्रमशः सौ और पांच सौ प्रतियों की सीमित संख्या में, मुंबई में २१ फरवरी और दिल्ली में २८ फरवरी २००२ को लोकार्पित होने जा रही है। उसमें रज़ा के चित्रों की ५४ रंगीन प्रतिकृतियां, कुछ काले-सफेद चित्र, के साथ एक लंबी बातचीत शामिल की गई है। राज-संस्करण में रज़ा द्वारा हस्ताक्षरित तीन मौलिक सिल्क्सक्रॉन भी शामिल हैं।

रज़ा ने अपनी जिंदगी की कहानी अपनी जुबानी कही है। उसे मुख्याधार बताकर उनकी जिंदगी और कला पर दूसरी पुस्तक इस वर्ष के उत्तरार्द्ध में निकालने की योजना है। कला-पुस्तक तो खासी महंगी है लेकिन यह दूसरी पुस्तक सामान्य पुस्तक होगी और हालांकि उसमें भी रंगीन प्रतिकृतियां आदि होंगी, रज़ा चाहते हैं कि वह इतने कम दामों पर मिलनी चाहिए कि युवा छात्र और कलाकार भी उसे बिना कठिनाई के खरीद सकें। रज़ा इस बार दो सप्ताह से कम के लिए भारत-प्रवास पर हैं क्योंकि उनकी चित्रकार-पत्नी जानीन मौजिला का स्वास्थ्य अच्छा नहीं है। पर इधर उन्होंने अपनी अधिकांश आय एक न्यास को देने का निश्चय किया है, जिसका उद्देश्य युवा कलाकारों और युवा हिंदी कवियों की मदद करने का है। उम्मीद है कि यह न्यास उनके प्रवास के दौरान ही दो या तीन ऐसे युवा प्रतिभाशालियों को एक-एक लाख रुपये के सम्मान से विभूषित करेगा। अपने आरंभिक जीवन के कठिन समय को बराबर याद रखते हुए रज़ा अपने वर्तमान साधनों का उपयोग युवा प्रतिभा के समर्थन में करना चाहते हैं। यों भी वे पिछले कई बरसों से अपने हर भारतीय प्रवास में यहां के युवा चित्रकारों के चित्र उदात्तापूर्वक खरीदकर उन्हें प्रोत्साहित करते रहे हैं।

जिंदगीनामा का विमर्श

यों तो सभी लेखक, दुनिया में कहीं भी, जब तक कि वे स्वयं अध्यापक और इसलिए शोधकर्मी और शोध-निर्देशक न हों, शोध से खौफ खाते हैं। हिंदी शोध की जो दुर्दशा है उसके चलते हिंदी शोध से तो बड़े खौफ और भी बढ़ जाता है। बरस भर में जि

शोध-प्रबंधों को पीएचडी डिग्री के लिए हिंदी स्वीकार किया जाता है- उनकी संख्या दो सैकड़ होगी ही, मोटे अंदाज से- उनमें शायद पांच प्रतिशत भी ऐसे नहीं होते जिन्हें ज्ञान के क्षेत्र में कुछ इजा करने वाला माना जा सके, जबकि उन्हें डिग्री के लिए स्वीकार करने का मुख्य आधार यही होता है। हिंदी साहित्य का मनोवैज्ञानिक, समाजशास्त्रीय, सांस्कृतिक अध्ययन-अनुशीलन साहित्य के विभागों में प्रायः हो जाता है, न कि मनोविज्ञान या समाजशास्त्र विभागों में। अकादेमिक दुनिया में जैसी सर्वप्रथम और समग्रता का दावा और प्रदर्शन हिंदी विभाग व्यवहार से करते हैं, वैसा शायद ही कोई अनुशासन करता हो।

ऐसे में कृष्णा सोबती के क्लैसिक उपन्यास 'जिंदगीनामा' पर लक्षणा नृत्य की दृष्टि विश्लेषण करते हुए कोई आलोचक समाकलन और वह भी एक ऐसी व्यक्ति जो मूलतः समाज-नृत्य-शास्त्र का विदुषी हो तो यह हिंदी साहित्य संदर्भ में थोड़ी असाधारण बात है। 'जिंदगीनामा' अपने प्रकाशन से ही इस अर्थ में विवादास्पद रहा कि उसकी भाषा और संरचना बेहद जटिल, अंतर्ग्रथित होने की वजह से कइयों के लिए असह्य रही है। वैसे भी वह एक बड़ी लंबी और आशयों में सचमुच महाकाव्य कृति है और कृतियों को ध्यान और धीरज से, जतन से वेदनशीलता से पढ़ने वाले कम ही होते हैं। आलोचना में तो ऐसी कृतियों के पाठ और विश्लेषण के लिए कोई शास्त्र या प्रविधियां विकसित करने की कोई चेष्टा, मुझे लगता है कि नहीं की गई है। हालत में डॉ. कुमूल अम्बी की यह अंग्रेजी पुस्तक 'डिस्कोर्स ऑफ जिंदगीनामा' ए सीएम एंथ्रोपॉलजिकल क्रॉनिक (हरमन पब्लिशिंग हाई दिल्ली) बहुत प्रासंगिक है और एक महत्वपूर्ण पहल भी। उससे यह प्रगट होता है कि 'जिंदगीनामा' में सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक संरचना का अपनी ही विसंरचना से लगातार द्वंद्व है। भक्त समुदाय और परिवार के मूल्य बीसवीं सदी के पूर के पंजाब में शाश्वत और निरंतर लगते रहे हों, वे अस्तित्व के गहरे दबाव और द्वंद्व में भी फंसे हुए हर शाश्वत संरचना का विलोम भी है और वह जहां वह संरचना अपने को अटल मान खड़ा होती संक्रिय होती है। सूर्य और चंद्र के मिथ से सामाजिक ढांचा और धर्म, स्त्रियों को दुनिया सहमत और प्रतिरोध, आत्म के सांस्कृतिक आदि पर गहराई और सूझ-बूझ से विचार किया है। कृष्णा सोबती तो क्या, किसी अन्य कथाकार हिंदी में ऐसा ज्ञानप्रद शोध कोई है, ऐसा जानकारी में नहीं है। हमारे मूर्धन्य और क्लैट निश्चय ही बेहतर आलोचनात्मक ध्यान, तै और विश्लेषण के योग्य हैं। यह पुस्तक प्रमाण कि अगर यह सब हो तो एक कृति की कितनी परतें, कितनी व्यापक अर्थ-छायाएं आलो हमारे लिए खोल सकती है।